पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार गाथा ३५६-३६५, अपोहक
जूनागढ़, ता. अप्रैल १९८९ के बाद, प्रवचन LA२०६

चर्चा १

पू. लालचंदभाई: (जैसा) कहा ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु: बोलो! कथन ऐसे आते हैं!

पू. लालचंदभाई: कथन की पद्धति अलग है (और) मर्म अलग है। वह बनाव बनता है, यह बात सच है। अनंतानुबंधी कषाय का व्यय स्वयंकृत है, जीवकृत नहीं है। क्योंकि अपोहक है। समझ में आता है? व्यय करता नहीं क्योंकि वो स्वयंकृत है। जैसे उत्पाद स्वयंकृत (है) वैसे व्यय भी स्वयंकृत (है) क्योंकि अपोहक है।

मुमुक्षु: उत्पाद भी स्वयंकृत और व्यय भी स्वयंकृत है। वाह!

पू. लालचंदभाई: आत्मा उसे व्यय नहीं करता। व्यय करता हो तो उत्पादक हो जाए।

मुमुक्षु: उत्पादक उसका पुद्गल है और व्यय करनेवाला भी पुद्गल ही है।

पू. लालचंदभाई: अथवा वह स्वयंकृत है। या पुद्गल लो या स्वयंकृत लो, मगर जीवकृत तो नहीं है। उत्पाद भी जीवकृत नहीं और व्यय भी जीवकृत नहीं। वह पर्यायकृत है, स्वयंकृत है क्योंकि आत्मा अपोहक है। उसके अभाव-स्वभावरूप विराजमान है। इसलिए उसका उत्पादक भी नहीं है (और) उसका छोड़नेवाला भी नहीं है। आहाहा! छूटता है वह हकीकत है। वह विकल्प छूट जाता है, वह हकीकत है। समझ गये? परंतु विकल्प को छोड़ता नहीं है और विकल्प को छोड़कर आत्मा को ग्रहण भी नहीं करता है। आहाहा!

अपोहक - जैसे आत्मा ज्ञायक है न, बहिन! ऐसे अपोहक का स्वरूप भी चिंतवन करने लायक है। जैसे आत्मा ज्ञायक है वैसे आत्मा अपोहक भी है। ज्ञायक का दूसरा नाम अपोहक है।

मुमुक्षु: ज्ञायक ही अपोहक ही है।

पू. लालचंदभाई: ज्ञायक स्वयं स्वभाव से, दूसरा नाम उसका क्या है? अपोहक। एक ही ज्ञायक के दो नाम - ज्ञायक भी है और अपोहक भी है। यहाँ तो चेतयिता को अपोहक कहा न! आत्मा अपोहक अर्थात् मिथ्यात्व के अभाव-स्वभाव से रहा हुआ है आत्मा के अभिमुख। मिथ्यात्व को छोड़े कौन? आहाहा! और आत्मा, आत्मा को ग्रहे कौन? आत्मा तो है ही। आत्मा आत्मा के घर में रहा हुआ है। आहाहा! घर के बाहर गया हो तो ग्रहण करे घर का। तो घर के बाहर (तो) गया नहीं है कभी।

मुमुक्षु: निजभाव को छोड़ा नहीं है।

पू. लालचंदभाई: परभाव को ग्रहता नहीं। जाने-देखे बस। जाने, बस जाने। हुआ, होता है और होगा - उसे जानता रहे। बाकी... आहाहा! त्याग का विकल्प और ग्रहण के विकल्प से शून्य है, अपोहक है। विकल्प बिना की वस्तु है। अपोहक अर्थात् उसके अभाव-स्वभाव से रहा हुआ है। विभाव

आत्मा में नहीं है। आहाहा! इसलिए आत्मा छोड़ता भी (नहीं है)।

मुमुक्षु: अपोहक की बात है।

पू. लालचंदभाई: जैसे आत्मा जाननहार है ऐसे आत्मा अपोहक है। केवल जाननहार है इसमें आ गया, सब आ जाता है; परंतु आजकल त्याग के नाम पर मिथ्यात्व पुष्ट हो जाता है।

मुमुक्षु: चारित्र के लिए अपोहक है।

पू. लालचंदभाई: अपोहक है। चारित्र का स्वरूप ही है वह। चारित्र की पर्याय साथ में प्रगट होती है न! सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र तीनों अंश साथ में प्रगट होते हैं। अब यदि आत्मा को त्याग करनेवाला मानता है तो सम्यग्दर्शन नहीं होगा। समझ में आया कुछ?

मार्मिक बात करता हूँ बहिन! मार्मिक बात है कि मुझे थोड़ा छोड़ना तो चाहिए, थोड़ा त्याग तो करना चाहिए - ऐसी जिसको भावना है उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता है। बहुत सूक्ष्म बात है। आत्मा ही सूक्ष्म है। आत्मा की बात ही सूक्ष्म है।

मुमुक्षु: उसको सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता?

पू. लालचंदभाई: क्यों नहीं होता है कि आत्मा राग के अभाव-स्वभाव(रूप) है, कपड़े के अभाव-स्वभाव(रूप) है, आहार-पानी के अभाव-स्वभावरूप विराजमान है। और मैंने आहार छोड़ा आज, पानी छोड़ा, आहाहा! मैंने कपड़ा छोड़ा, मैंने गहना छोड़ दिया। समझ गए? गहने छोड़ दिए, घड़ी छोड़ दी आज मैंने। आहाहा! तूने छोड़ा न, आहाहा! कर्ताबुद्धि है। जो परद्रव्य है उसको कौन छोड़ सकता है? परद्रव्य तो भिन्न ही है। ऐसे राग भिन्न है उसको छोड़े कौन? आहाहा! और ज्ञायक अभिन्न है उसको ग्रहे कौन? क्योंकि आत्मा तो ज्ञान से अभिन्न है, ज्ञान से अभिन्न है और ज्ञान में आत्मा को ग्रहना है। ज्ञान में आत्मा को ग्रहना है तो तो ज्ञान और आत्मा (को) अलग माना तूने। ... ...बुद्धि और ज्ञाताबुद्धि और त्यागबुद्धि।

आहाहा! जाननहार है। उसने कुछ ग्रहा नहीं, वह छोड़े क्या? प्रथम से ही जाननहार है, अनादि-अनंत जाननहार है। आत्मा जाननहार, जाननहार, जाननहार, उसका दूसरा नाम अपोहक है।

मुमुक्षु: अपोहक! अपोहक! अपोहक! अपोहक!

पू. लालचंदभाई: अपोहक! अपोहक! ज्ञायक तो (ज्ञायक ही है)। ज्ञायक ही ज्ञायक है। अपोहक ही अपोहक है।

त्यागबुद्धि सम्यग्दर्शन नहीं होने देती। कर्ताबुद्धि, ज्ञाताबुद्धि, (मिथ्याबुद्धि).... मिथ्यात्व का दोष, ज्ञान का दोष, चारित्र का दोष - त्रिदोष हैं। पूरा जगत भले सामने (विरोध में) हो जाए मगर ये बात सच्ची है समयसार की। समयसार की बात सत्य है, परम सत्य है। उसे समझने का प्रयत्न करना। आज समझ में न आये (तो) कल समझ में आएगा, परसों समझ में आएगा। समझने का प्रयत्न करना। पिंकी! आज यदि कम समझ में आवे (तो) कल ज्यादा समझ में आएगा। मगर ये ख्याल रखना कि देव-गुरु-शास्त्र पर श्रद्धान रखना कि समयसार में जो लिखा है (वह) परम सत्य है। मैं कोशिश करता हूँ। आज मेरे को समझ में नहीं आता है। गहरी बात है थोड़ी। समझे? तो मैं समझने की कोशिश करता हूँ। आहाहा! अपने हित के लिए शास्त्र लिखा है। क्योंकि त्यागबुद्धिवाले के लिए अपोहक लिखा है।

त्यागबुद्धिवाले के लिए अपोहक है। कि तुझे किसको छोड़ना है? तू तो छूटा हुआ ही है। राग बिना की तेरी चीज है अनादि-अनंत। राग को तुझे छोड़ना है? आहाहा! राग बिना की वस्तु है, ज्ञान-दर्शनमयी है आत्मा। आस्रव का तो अभाव है भगवान आत्मा में। तुझे आस्रव को छोड़ना है? पुण्य-पाप को तुझे छोड़ना है? पाप को आज छोड़ना (है), कल पुण्य को छोड़ना (है)। अरे! पुण्य-पाप बिना की वस्तु है, छोड़े कौन? आहाहा! ऐसी वस्तु, उससे रहित है - अपोहक, उसको ग्रहण कर ले न अंदर में जाकर। इसे देख ले न!

मुमुक्षु: ग्रहण के विकल्प बिना ग्रहण कर ले न!

पू. लालचंदभाई: हाँ! ग्रहण के विकल्प बिना ग्रहण कर ले न! बहुत अच्छा स्वाध्याय हुआ अपना तो। चलो! दुनिया दुनिया का जाने हम तो अपना स्वाध्याय करते हैं, कोई समझे या न समझे। उससे हमें कोई मतलब नहीं है।

त्यागबुद्धि है। आहाहा!

मुमुक्षु: मिथ्याबुद्धि।

पू. लालचंदभाई: मिथ्याबुद्धि है।

मुमुक्षु: जैसे जानने के बहाने मिथ्यात्व पुष्ट करता है, ऐसे ग्रहण-त्याग की बुद्धि में मिथ्यात्व पुष्ट होता है।

पू. लालचंदभाई: उसमें ही रुक गये। गेहूँ को अच्छे से धोना फिर धूप में सुखाना। फिर हाथ से चक्की घुमाना और चक्की चलाने के पहले नहा लेना, स्नान कर लेना। समझ गये? स्वच्छ कपड़े पहनना और फिर आटा पीसना। आहाहा! और फिर अपने चौके में ही भोजन बनाना और दूसरा घुस जाये (तो) खत्म हो गया चौका, अशुद्ध हो गया हमारा!

मुमुक्षु: मिथ्यात्व घुस गया अंदर।

पू. लालचंदभाई: जाननेवाले को करनेवाला माना इसलिए करने में रुक गया। जाननेवाला हूँ, उसका सब हो रहा है, मैं जाननेवाला हूँ वो नहीं रहा।

मुमुक्षु: मैं कर सकता हूँ - ऐसा आ गया। मैं करनेवाला हूँ - ऐसा आ गया।

पू. लालचंदभाई: ऐसा आ गया न, कर्ताबुद्धि हो गई। ये सब चलता है - हमने सुना है। हमारा सुना हुआ है।

मुमुक्षु: आत्मा करता तो नहीं है, पर इतना करना तो चाहिए न? फिर मान करता है कि हम शुद्ध खाते हैं हम। त्याग, इतना त्याग है हमारा।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! आपने कितना त्याग किया? कि इतना-इतना त्याग किया। अच्छा! आपने त्याग किया तो आचार्य भगवान तो 'ना' बोलते हैं कि आत्मा त्याग करनेवाला नहीं है। तो आप सच्चे (हैं) कि आचार्य भगवान सच्चे (हैं)? मेरे को समझाओ तो सही।

मुमुक्षु: कुंदकुंदाचार्य तो 'ना' बोलते हैं।

पू. लालचंदभाई: 'ना' बोलते हैं। 'अपोहक' शब्द ऐसा सूक्ष्म लिखा है। ये तो निकट भव्य हो उसे ही ख्याल आये बाकी त्यागबुद्धि छूटनी मुश्किल है। (जैसे) ज्ञाताबुद्धि, कर्ताबुद्धि छूटनी मुश्किल, ऐसे

त्यागबुद्धि छूटनी (भी) मुश्किल है।

मुमुक्षु: ...

पू. लालचंदभाई: कि आत्मा त्याग करनेवाला नहीं है क्योंकि आत्मा त्यागस्वरूप ही है।

मुमुक्षु: त्यागस्वरूप ही है अनादि-अनंत।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! जानना, जानना और जानना। आत्मा को जान; आत्मा को जान, आत्मा का श्रद्धान और आत्मा में लीन(ता) - इतना ही है बाकी कुछ है नहीं। अपोहक को जान न तू! अपोहक (अंदर) विराजमान है न, उसे जान न तू।

गहन अंधकार है। ये बात कहाँ चले भी नहीं। सुननेवाले उठकर चले जायें कि त्याग की बात कुछ करते नहीं। बोलो! त्याग की बातें आती हैं चरणानुयोग में, सब व्यवहार की बातें भी बहुत आती हैं, लेकिन निश्चय से आत्मा का क्या स्वरूप है - वह समझे बिना वह त्याग का व्यवहार कहाँ से हो?

मुमुक्षु: वो तो सब सहज में होता है।

पू. लालचंदभाई: सहज में होता है। हाँ! गुणस्थान की परिपाटी अनुसार सहज में ऐसी स्थिति भजती है। जब मुनि के योग्य स्थिति आती है तो कपड़े छूट जाते हैं। बस! ...

साधक को। एक ही पर्याय में दो भेद (हैं)। स्वाश्रित जितनी अभेद होती है, वह तो चारित्र है। मगर जितना भेद पराश्रित होता है न, अभी साधक है न! तो वो जो है वो व्यवहार है; वो चारित्र की पर्याय का भेद पड़ा अभेद में से, उतना व्यवहार है। और वो जो भेद का विषय है, वो जो भेद के विषय हैं, वे विषय हैं उन्हें अंदर में जाकर जहाँ वे छूट जाते हैं तो उनको छोड़ा ऐसा कहा जाता है। पूरी पर्याय अभी यथाख्यात् चारित्ररूप नहीं हुई, स्वरूपाचरण चारित्रमात्र है, संयमरूप चारित्र नहीं है अभी। संयमासंयम नहीं है, असंयम है। अभी (चतुर्थ गुणस्थानमें) स्वरूपाचरण चारित्र का नाम तो असंयम है। संयमासंयम और फिर संयम छठ्ठे-सातवें (में)।

मुमुक्षु: वह बढ़ता जाता है उसके ही नाम सब (पड़ते हैं)।

पू. लालचंदभाई: वह चारित्र की जो पर्याय है वह पर्याय अंदर में विशेष-विशेष लीन होती जाती है। विज्ञानघनस्वभाव के साथ जमती जाती है पर्याय। पर्याय में वीतरागता बढ़ती है। जितनी पर्याय में वीतरागता बढ़ती है उसका नाम चारित्र है। और जितना मल और मैल है वो दोष है चारित्र का; चारित्र नहीं है। और उपचार से चारित्र कहा, व्यवहार से चारित्र कहना वह उपचार है। समझ गए? पाँच महाव्रत को चारित्र कहना - वह चारित्र का मैल है, उपचार से चारित्र है, सचमुच तो चारित्र नहीं है क्योंकि चारित्र के लक्षण का अभाव है उसमें। चारित्र के लक्षण का उसमें अभाव है। चारित्र का लक्षण तो वीतरागता है। उन पाँच महाव्रत में वीतरागता है?

मुमुक्षु: नहीं।

पू. लालचंदभाई: वह तो राग है। होता है निश्चय के साथ व्यवहार। परिपूर्ण पर्याय न हो तब तक व्यवहार होता है। परंतु कल व्यवहार की बात की थी कि हेयबुद्धि से जानना उसका नाम व्यवहार है। वह आत्मा का स्वरूप है ऐसा नहीं जानना। वह चारित्र है ऐसा नहीं जानना। आहाहा! वह बंध का कारण है ऐसा जानना, मोक्षमार्ग नहीं है।

मुमुक्षु: बराबर! आत्मा का स्वरूप तो नहीं है, पर्याय का (भी) स्वरूप नहीं है।

पू. लालचंदभाई: पर्याय का स्वरूप नहीं है। पर्याय का मैल है वह तो। मलिनभाव-आस्रवतत्त्व है।

मुमुक्षु: (वे) आत्मा के परिणाम ही नहीं हैं वास्तव में।

पू. लालचंदभाई: नहीं! वास्तव में तो नहीं हैं।

मुमुक्षु: पुद्गल के परिणाम हैं।

पू. लालचंदभाई: पुद्गल के परिणाम हैं। ये भी मालूम नहीं है कि चारित्र की पर्याय के, साधक के, दो भेद होते हैं - निश्चय और व्यवहार। ये दो भेद हैं इसलिए निश्चय-व्यवहार लिखा है। राग होता है वह पुद्गल का व्यवहार नहीं है, (वह) चारित्र की पर्याय का व्यवहार है। चारित्र का मल और मैल है। निश्चय से पुद्गल के परिणाम हैं - ये बात सच है परंतु पूर्ण पर्याय प्रगट नहीं हुई है अभी, यथाख्यात्। तब इतना दोष है, दोष को दोष जानता है साधक। दृष्टि अपेक्षा से तो चारित्र की पर्याय का भी अभाव है, वो बात अलग है। उपादेय तत्त्व की बात अलग है और जानने की बात अलग है। आहाहा!

जैसे-जैसे विज्ञानघन स्वभाव होता जाता है, वैसे-वैसे वह आस्रव से निवृत्त होता जाता है। अर्थात् आस्रव का सद्भाव है संवर-निर्जरा के साथ। मोक्ष के साथ आस्रव का अभाव है। (जब तक) मोक्ष नहीं होता तब तक संवर-निर्जरा के साथ आस्रव है - ऐसा जानना चाहिए। आहाहा! वह आत्मा है और उपादेय है और उसका कर्ता है - ये बात नहीं है। वो तो अनात्मा है, आस्रवतत्त्व तो अनात्मा है।

मुमुक्षु: अनात्मा है।

पू. लालचंदभाई: संवर-निर्जरा व्यवहारजीव है, पारिणामिकभाव से विराजमान निश्चयजीव है। निश्चयपूर्वक व्यवहार का प्रकरण है, वह साधक की बात है। अज्ञानी को निश्चय-व्यवहार नहीं होता। केवली को निश्चय-व्यवहार नहीं होता। साधक को निश्चय-व्यवहार होता है, (जब तक) पूर्ण नहीं होता तब तक, बस। वह व्यवहार पराश्रित है, निश्चय स्वाश्रित है। जितनी वीतरागता होती है उतनी स्वाश्रित है; वह तो चारित्र है। वह (व्यवहार)चारित्र मल और मैल है; हेय है वह तत्त्व, प्रगट करने योग्य भी नहीं है, आश्रय करने योग्य तो (नहीं है)।

भेद के कथन सब ज्ञानप्रधान होते हैं। समझ गए? दृष्टिप्रधान में यह कुछ है ही नहीं। पर्यायमात्र का अभाव है फिर सवाल ही कहाँ है? और यहाँ चारित्र की पर्याय के निश्चय में तो, आहाहा! जो परिणाम आत्मा हो जाता है, वह भी चारित्र की पर्याय का निश्चय है; स्वरूपाचरण चारित्र- वह चारित्र की पर्याय का निश्चय है।

साधक को, सम्यग्दृष्टि को देव-गुरु-शास्त्र संबंधी प्रशस्त राग आता है, (वह) चारित्र का मैल है।

चर्चा २

ये समयसारजी परमागम शास्त्र है, उसका सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है। गाथा ३५६ से ३६५, दस गाथा हैं एकसाथ। उसमें विषय (है) - चार प्रकार की पर्याय में निश्चय - ज्ञान का, दर्शन का, श्रद्धा का और चारित्र का। चार प्रकार के परिणाम जो आत्मा के सन्मुख होकर और आत्मा में अभेद हो जाते हैं, द्रव्य-पर्याय का भेद भी जहाँ दिखाई नहीं देता, ऐसी निर्विकल्प ध्यानस्थ अवस्था को परमात्मा निश्चय के परिणाम कहते हैं। अब जब तक साधक है, पर्याय का परिपूर्णपने स्वभाव में अभेद होना होता नहीं, तब तक उस-उस पर्याय का थोड़ा भेद भी खड़ा होता है।

जैसे कि ज्ञान की पर्याय आत्मा के सन्मुख होकर अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हुआ परंतु (वह) अतीन्द्रियज्ञान क्षयोपशम ज्ञान है, वह क्षायिक नहीं हुआ। (जब तक) क्षायिक ज्ञान नहीं होता तब तक थोड़ा इंद्रियज्ञान का भाग भी रहता है। ऐसे दर्शन उपयोग, ऐसे श्रद्धा में भी व्यवहार श्रद्धा का विकल्प और चारित्र में भी थोड़ी वीतरागता और थोड़ा रागभाव अभी रहता है। तो जितना वीतरागभाव होकर अभेद हुआ आत्मा, वह तो निश्चयचारित्र के परिणाम हैं। परंतु जितने भाग में अभी राग दिखाई देता है और राग का निमित्तपना भी है और नैमित्तिकभाव भी है...

मुमुक्षु: भाई! हिन्दी (में लीजिए)।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! चारित्र की पर्याय का निश्चय (और) चारित्र की पर्याय का व्यवहार का प्रकरण चलता है। चारित्र की पर्याय का निश्चय इसका नाम है कि जो परिणाम आत्मस्वभाव में डूब जाता है, लीन हो जाता है, लवलीन हो जाता है, एकाग्र-ध्यानस्थ अवस्था, जिसमें शुद्ध द्रव्य और शुद्ध पर्याय का भेद होने पर भी दिखाई नहीं देता है - ऐसी ध्यानस्थ अवस्था, निर्विकल्पध्यान अवस्था उसका नाम निश्चय, चारित्र की पर्याय का निश्चय है। इस चारित्र की पर्याय के निश्चय में जितना चारित्र की पर्याय का निश्चय नाम है उसमें तो सर्वथा वीतरागता है, उसमें राग नहीं है। मगर वो पर्याय जैसी यथाख्यात् चारित्र (की) होनी चाहिए, वह नहीं हुई। अभी स्वरूपाचरण चारित्र है। तो स्वरूपाचरण चारित्र जितना हुआ उतनी तो वीतरागता है। वीतरागता है इतनी निश्चयचारित्र की पर्याय है। और यथाख्यात् चारित्र नहीं हुआ तो थोड़े अंश में पराश्रित राग भी होता है, वो जो राग होता है, वो राग होता है वो राग मेरा नहीं है। राग होने पर भी राग मेरा नहीं है। और वह आत्मा के सन्मुख होकर और राग की उत्पत्ति नहीं होती है उसका नाम व्यवहारचारित्र है; राग का त्याग हो गया उसका, ऐसे व्यवहारचारित्र की पर्याय का अभी प्रकरण चलता है।

(जिसप्रकार ज्ञान-दर्शन गुण का व्यवहार कहा है) इसीप्रकार चारित्रगुण का व्यवहार कहा जाता है, व्यवहार की बात है, भेद की बात है। व्यवहार यानि भेद की बात है। **जैसे श्वेतगुणसे परिपूर्ण स्वभाववाली वही कलई,** कलई तो वही की वही (है)। जिस कलई की पर्याय में, पर्याय के अंदर निश्चय प्रगट होता था, उसी कलई की पर्याय के अंदर व्यवहार क्या है? - वह बताते हैं। कलई वही - द्रव्य वही और पर्याय भी वही। उस पर्याय के दो भाग, एक कलई में अभेद हो गयी पर्याय और एक कलई की पर्याय थोड़ा दीवार का संग करती है।

पर्याय एक है, भाग दो हैं। कलई तो सफेद गुण से भरा हुआ पदार्थ है। उसकी पर्याय में

सफेदी है। वो सफेदी जब कलई के स्वभाव से अभेद होती है तो वो तो निश्चय है। मगर वो कलई की पर्याय दीवार की.. खड़ी यानि कलई, कलई। खड़ी यानि कलई - चूना, चूना। वो दीवार के संग में जाती है तो उसका नैमित्तिकभाव प्रगट हो गया। कलई की पर्याय नैमित्तिक और दीवार निमित्त, ऐसे निमित्त-नैमित्तिक संबंध को देखना उसका नाम व्यवहार है। पर्याय में, सारी पर्याय-पूर्ण पर्याय अभेद नहीं हुई कलई में। तो तो व्यवहार का ही पूरा अभाव हो गया। यथाख्यात् चारित्र होवे तो निश्चय-व्यवहार की बात है ही नहीं। वो तो आत्मा हो गया।

मगर चौथे, पाँचवे, छठ्ठे, सातवें, दसवें तक निश्चयरूप पूर्ण चारित्र की पर्याय प्रगट नहीं हुई, तेरहवें गुणस्थान में पूरा निश्चय हो गया। जैसे केवलज्ञान शुद्धनय.... शुद्धनय केवलज्ञान हुआ तो शुद्धनय पूरा हुआ। जहाँ तक केवलज्ञान नहीं होता है वहाँ तक शुद्धनय पूरा नहीं होता है। समझे? ऐसे यथाख्यात् चारित्र नहीं है तहाँ तक निश्चय-व्यवहार के दो भेद पड़ते हैं। स्वाश्रित निश्चय और पराश्रित-भेदाश्रित व्यवहार। तो ही साधक रहता है, नहीं तो परमात्मा बन जाये। या तो अज्ञानी (रहे) या परमात्मा (बन जाये)।

परमात्मा में निश्चय-व्यवहार नहीं है और अज्ञानी में भी निश्चय-व्यवहार नहीं है। साधक के अंदर दो नय होते हैं। नय अनुभव ज्ञान का धर्म है। नय है (वो) सम्यग्ज्ञान है, सम्यक् प्रमाण ज्ञान है उसका एक अंश नय है। तो एक नय का नाम निश्चय और दूसरे नय का नाम व्यवहार। निश्चय - पर्याय का नाम निश्चय क्योंकि स्वभाव में अभेद हो जाती है। जैसी वीतरागमूर्ति आत्मा है और परिणाम भी अभेद होकर वीतराग हो गया इतने अंश में। पर्याय का पूरा अंश वीतराग नहीं हुआ। थोड़ा अंश वीतराग हुआ और थोड़े अंश में राग है।

मुमुक्षु: अच्छा! वो व्यवहार है।

पू. लालचंदभाई: उस राग की निवृत्ति का नाम व्यवहार है। राग है.. उसकी (स्वभाव की) प्रवृत्ति का नाम निश्चय और (राग की) निवृत्ति का नाम, नास्ति से (व्यवहार है)। राग, राग तो है वहाँ से हटकर बार-बार जाता है, चारित्र बार-बार होता है। चारित्र बार-बार होता है। तो वो राग है वो अस्तिरूप है, वो व्यवहार चारित्र है। व्यवहार चारित्र तो है निमित्त-नैमित्तिक संबंध इतना तो बनता है। तो भी, तो भी अपने स्वभाव में चली जाती है पर्याय। ये आएगा आहिस्ते-आहिस्ते.... जितना राग है उतना तो व्यवहार है मगर अब राग की जितनी निवृत्ति होती है उसका नाम व्यवहार है। राग छूटता है उसका नाम व्यवहार है, और स्वभाव की प्रवृत्ति उसका नाम निश्चय। अंदर में लीन हुआ, लीन होता है तो राग छूटता है। लीन हुआ तो निश्चय और राग छूट गया, राग का त्याग हुआ, राग का (त्याग हुआ), राग की उत्पत्ति नहीं हुई...

मुमुक्षु: उसका नाम व्यवहार है। अच्छा!

पू. लालचंदभाई: आएगा सब खुलासा।

श्वेतगुणसे परिपूर्ण स्वभाववाली वही कलई, स्वयं दीवार-आदि परद्रव्यके स्वभावरूप परिणमित न होती हुई व्यवहार की बात चलती है। व्यवहार की बात चलती है तो पहले तो स्वभाव बताते हैं। पहले तो स्वभाव बताते हैं कि कलई श्वेतगुण से भरा हुआ पदार्थ है। **स्वयं** यानि कलई

दीवार-आदि परद्रव्यके स्वभावरूप परिणमित न होती हुई दीवार काली है, कलई सफेद है। सफेद भाव कालेरूप परिणमता नहीं है। **दीवार-आदि परद्रव्यके स्वभावरूप** अपना सफेद स्वभाव छोड़कर काली दीवार होने पर भी उसके स्वभावरूप परिणमती नहीं है। सफेदी छोड़ती नहीं है और काली होती नहीं है। कलई काली होती नहीं है। कलई तो सफेद ही रहती है और दीवार काली है, black (काली)। समझे?

तो अपना जो स्वभाव (है उसे) छोड़ती नहीं है, कलई अपना स्वभाव (नहीं छोड़ती)। या तो डिब्बे में हो या तो दीवार में हो (लेकिन) अपना स्वभाव छोड़ती नहीं है। **स्वयं दीवार-आदि परद्रव्यके स्वभावरूप परिणमित न होती हुई** अपना सफेद स्वभाव छोड़ती नहीं है और काले रंगरूप होती नहीं है। **और** दूसरा, **दीवार-आदि परद्रव्यको अपने स्वभावरूप परिणमित न कराती हई,** स्वयं कालेरूप नहीं होती है और दीवार सफेदरूप होती नहीं है। दो द्रव्य की भिन्नता रहती है, संयोग-संबंध में भी भिन्नता रहती है। संयोग-संबंध हुआ, कलई दिवार से चिपकी, संयोग तो हुआ, तो भी निज-निजभाव में रहते हैं। एक दूसरे भाव का पलटन होता नहीं है। कलई काली नहीं होती है और काली दीवार सफेद नहीं होती है।

मुमुक्षु: ऐसी भिन्नता है।

पू. लालचंदभाई: ऐसी भिन्नता, द्रव्य का स्वभाव बताया। अब पर्याय का स्वभाव बतायेंगे। ये तो द्रव्य का स्वभाव है मूल। निश्चय की बात पहले करते हैं, बाद में व्यवहार की बात है।

दीवार-आदि परद्रव्यको अपने स्वभावरूप परिणमित न कराती हई, काली दीवार सफेद होती नहीं है, **दीवार-आदि परद्रव्य जिसको निमित्त है** अब आया। कर्ता-कर्म संबंध का अभाव है, निमित्त-नैमित्तिक संबंध का एक समय के लिए सद्भाव बताते हैं। परस्पर निमित्त है। कलई दीवार को निमित्त और दीवार कलई को निमित्त। एक तरफी निमित्त नहीं है। निमित्त दो तरफी होता है। केवलज्ञान में आता है न! लोकालोक केवलज्ञान में निमित्त और केवलज्ञान लोकालोक में निमित्त। परस्पर निमित्त! नहीं तो शुद्ध निमित्त-नैमित्तिक है वहाँ। पारमार्थिक होने पर भी निमित्त-नैमित्तिक का इतना ज्ञान कराते हैं।

मुमुक्षु: यहाँ शुद्ध निमित्त-नैमित्तिक नहीं है?

पू. लालचंदभाई: नहीं! यहाँ नहीं है। यहाँ आएगा अभी, अंदर आएगा, चारित्र की पर्याय।

मुमुक्षु: साधक है इसलिए?

पू. लालचंदभाई: साधक की है ये बात। निश्चय जिसको प्रगट हुआ है उसको ही व्यवहार होता है। और व्यवहार होने पर भी उसमें आत्मबुद्धि नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु: केवली के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है वो शुद्ध है।

पू. लालचंदभाई: शुद्ध है।

मुमुक्षु: और जो साधक के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है वो अशुद्ध है।

पू. लालचंदभाई: थोड़ा अशुद्ध है, अशुद्ध है। यथाख्यात् चारित्र नहीं है, चारित्रमोह का उदय है। पूर्ण वीतराग पर्याय हुई नहीं है। पूर्ण नहीं हुआ हो तो अपूर्णता में दोष होता है। दो अंश शुद्ध नहीं हैं;

थोड़ा अंश शुद्ध है और थोड़ा अंश मलिन-अशुद्ध है। निश्चय की बात तो सरल थी, व्यवहार की बात जरा कठिन है।

मुमुक्षु: कठिन लगती है।

पू. लालचंदभाई: कोई बात नहीं, आहिस्ते-आहिस्ते ठिकाने आ जाएगा सब।

दीवार-आदि परद्रव्य जिसको निमित्त है वो कर्ता-कर्म संबंध उड़ा दिया। एक दूसरे के भावरूप परिणमते नहीं हैं इसलिए अपने-अपने चतुष्टय में हैं। स्वचतुष्टय में दीवार और कलई अपने स्वचतुष्टय में - अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में (है)। ऐसा होने पर भी, ऐसा होने पर भी **दीवार-आदि परद्रव्य जिसको** यानि कलई को-चूने को **निमित्त है**। चूने की पर्याय-कलई की पर्याय नैमित्तिक और वो निमित्त, दीवार निमित्त। दीवार निमित्त और ये चूना डब्बे में नहीं है अब, अब दीवार में चिपक गया है। दीवार में चिपकता है तो निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। डब्बा इधर और काली दीवार इधर। वो उसको सफेद नहीं करती है और वो काली नहीं होती है। वो तो अलग बात बता दी दो द्रव्य की भिन्नता (की)। कर्ता-कर्म संबंध का अभाव है और निमित्त-नैमित्तिक संबंध का सद्भाव है। इसमें लिखा है।

दीवार-आदि परद्रव्य जिसको अर्थात् कलई को अर्थात् खड़ी को अर्थात् चूने को **निमित्त है**। वह कब? दीवार में चिपकी हो कलई तब। डब्बे में हो तब निमित्त-नैमित्तिक नहीं होता। दो द्रव्य की वर्तमान वर्तती पर्याय के बीच निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता है। दो द्रव्य के बीच में कर्ता-कर्म संबंध नहीं होता और दो द्रव्य के बीच में निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी नहीं होता। आहाहा! दो द्रव्य के बीच निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता नहीं है और कर्ता-कर्म संबंध (भी) होता नहीं है। अब दो द्रव्य की पर्याय के बीच में निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है। कब? कि डब्बे में से निकलकर वहाँ चिपकी तब। चारित्र की पर्याय अंदर में डूबी, डब्बे में हो तहाँ तक तो वीतरागता है। मगर डब्बे में से छूटी, ये देव-गुरु-शास्त्र मेरे हैं, भगवान की भक्ति - ऐसा राग आता है; जब राग उत्पन्न होता है... राग में निमित्त होता है, वीतरागभाव में परपदार्थ निमित्त नहीं होता है। अशुद्धता में निमित्त है। अशुद्धता अपनी उपादान है, निमित्तकारण चारित्रमोह का उदय है। अभी चारित्रमोह का उदय विद्यमान है साधक को। दर्शनमोह का अभाव हो गया और सारे चारित्रमोह का उदय नहीं है। चारित्रमोह का एक भाग क्रोध-मान-माया-लोभ है एक चौकड़ी चारित्रमोह के निमित्तरूप द्रव्यकर्म, उसका अभाव (हो गया)। उसका अभाव तो इधर अनंतानुबंधी कषाय का अभाव (है) मगर इतना ही अभाव हुआ है।

मुमुक्षु: ऐसा निमित्त-नैमित्तिक!

पू. लालचंदभाई: वो तो अभाव हो गया, अब वो तो आत्मा हो गई।

मुमुक्षु: चारित्रमोह संबंधी।

पू. लालचंदभाई: चारित्रमोह संबंधी इतना भाग तो स्वभाव में अभेद हो गया, तो निमित्त का भी (अभाव हुआ)। स्वभाव की पर्याय प्रगट होती है उसमें निमित्त होता नहीं है। स्वरूपाचरण चारित्र में कोई निमित्त नहीं है, मगर अभी अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन की कषाय है, तो उसके अंदर चारित्रमोह निमित्त है। होता है परस्पर निमित्त।

परद्रव्य जिसको निमित्त है ऐसे अपने श्वेतगुणसे परिपूर्ण स्वभावके परिणाम द्वारा भले निमित्त हो दीवार। दीवार भले निमित्त हो मगर वो सफेदरूप परिणमती है। वो निमित्तरूप नहीं परिणमती है। सफेदरूप परिणमती है तो भी वो निमित्त है तो ये नैमित्तिक हो गया। **अपने श्वेतगुणसे परिपूर्ण स्वभावके परिणाम द्वारा उत्पन्न होती हुई, कलई जिसको निमित्त है** अब देखो! पहले दीवार निमित्त थी अब कलई निमित्त है। कलई निमित्त और दीवार की पर्याय नैमित्तिक। यानि दीवार की काली पर्याय सफेद हुई ऐसा नहीं परंतु सफेद का उपचार आता है। दीवार सफेद हो गई - ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। दीवार काली है, वो सफेद होती नहीं। लेकिन वो सफेद हुई ऐसा कहने में आता है।

कलई जिसको निमित्त है ऐसे अपने (-दीवार आदिके-) स्वभावके परिणाम द्वारा उत्पन्न होनेवाले दीवार-आदि परद्रव्यको, दीवार आदि परद्रव्य को **अपने (-कलईके-) स्वभावसे श्वेत करती है--ऐसा व्यवहार किया जाता है;** कलई दीवार को सफेद करती है ऐसा व्यवहार किया (जाता है)। काली दीवार को सफेद किया। कल काली थी आज सफेद दिखती है दीवार। वो व्यवहारनय का कथन है, झूठा कथन है। संयोग का स्वभाव में आरोप करता है। कलई सफेद है, संयोग है; (और) काली दीवार (का कालापन) उसका (दीवार का) स्वभाव है। उस संयोग का उसमें आरोप करके, दीवार काली होने पर भी 'दीवार सफेद हो गयी' - ऐसा व्यवहारीजन कहते हैं।

मुमुक्षु: कहते हैं वैसी हो गई कि नहीं हुई?

पू. लालचंदभाई: नहीं हुई। हाँ! कथनमात्र है। **ऐसा व्यवहार किया जाता है;** ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। वो काली दीवार और चूना डब्बे में था तब भी चूने की पर्याय तो सफेद थी और दीवार पर चिपकी तब पर्याय तो सफेद है। लेकिन वो सफेद पर्याय स्वाभाविक नहीं रही, अब नैमित्तिक हो गई।

मुमुक्षु: निमित्त सापेक्ष देखी न, इसलिए!

पू. लालचंदभाई: निमित्त सापेक्ष हो गयी, देखा, इसलिए।

इसीप्रकार जिसका ज्ञानदर्शनगुणसे परिपूर्ण, पर के अपोहनस्वरूप स्वभाव है ये main (मुख्य) चीज कह दी। जैसे पहले कलई की कही दो द्रव्य की भिन्नता, ऐसे दो द्रव्य की भिन्नता का प्रकार बताते हैं। अर्थात् कर्ता-कर्म संबंध का तो अभाव है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप संक्रमण प्राप्त नहीं करता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप होता नहीं है। संक्रमण होता नहीं है; चेतन जड़रूप नहीं होता है, जड़ चेतन नहीं होता है। संक्रमण अर्थात् बदलाव होता नहीं है।

इसीप्रकार जिसका ज्ञानदर्शनगुणसे परिपूर्ण, पर के अपोहनस्वरूप स्वभाव है आहाहा! राग के अभावस्वभाव और निमित्त के भी अभावस्वभाव - ऐसा उसका स्वभाव है। **पर के अपोहनस्वरूप स्वभाव है ऐसा चेतयिता भी, स्वयं पुद्गलादि परद्रव्यके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता हुआ** राग और देह-मन-वाणी उन जड़रूप परिणमता नहीं है। जैसे कलई काली दीवाररूप परिणमती नहीं है, ऐसे अपना जो ज्ञान-दर्शन से भरा हुआ ज्ञाता आत्मा, वो देह-मन-वाणी को जानने पर भी उसरूप परिणमता नहीं है। अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं है। चेतन जड़रूप नहीं

होता है और जड़ चेतन नहीं होता है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध के सद्भाव में भी (कर्ता-कर्म) नहीं होता है।

स्वयं पुद्गलादि परद्रव्यके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता हुआ जाननहार आत्मा, जाननहार आत्मा पुद्गल आदि परद्रव्य जो हैं उनके स्वभावरूप परिणमता नहीं है, जड़रूप होता नहीं है। **और** दूसरा, दूसरी side में **पुद्गलादि परद्रव्यको** पुद्गलादि परद्रव्य जो निमित्त हैं ज्ञान में तो भी ज्ञान में निमित्त होने पर भी वो ज्ञान पुद्गल को चेतनरूप नहीं बनाता है और पुद्गल चेतनरूप नहीं बनता है। चेतन चेतनरूप है और पुद्गल (पुद्गलरूप रहता है)।

जड़ भावे जड़ परिणमे, चेतन-चेतनभाव;

कोई कोई पलटे नहीं, छोड़ी आप स्वभाव। १ (श्रीमद् राजचंद्र राजपद - पद २८)

अपना स्वभाव छोड़ता नहीं है; भले निमित्त के संग में गया, भले ज्ञान में ज्ञेय निमित्त हो तो भी ज्ञान तो ज्ञानरूप रहता है, निमित्तरूप होता नहीं है। राग जानने में आया तो ज्ञान रागरूप होता नहीं है। राग निमित्त है, निमित्त के सद्भाव में भी ज्ञान अपना स्वभाव छोड़ता नहीं है।

मुमुक्षु: ज्ञान ज्ञानरूप ही परिणमता है।

पू. लालचंदभाई: परिणमता है, निमित्त का सद्भाव हो या अभाव हो।

स्वयं पुद्गलादि परद्रव्यके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता हुआ और पुद्गलादि परद्रव्यको अपने स्वभावरूप परिणमित न कराता हुआ, चारित्रमोहकर्म को आत्मारूप नहीं परिणमाता और स्वयं चारित्रमोहरूप नहीं परिणमता। **पुद्गलादि परद्रव्य जिसको निमित्त है**, **पुद्गलादि परद्रव्य जिसको निमित्त है** चारित्र की पर्याय में दूसरे निमित्त हैं। **ऐसे अपने ज्ञानदर्शनगुणसे परिपूर्ण पर-अपोहनात्मक (-पर के त्यागस्वरूप) स्वभावके परिणाम द्वारा उत्पन्न होता हुआ,** आहाहा! स्वयं तो स्वयंरूप परिणमता है, पररूप परिणमता ही नहीं। बाद में अंत में आएगा सब, अंत में। Closing (अंत) में एक पंक्ति में सब खुलासा करेंगे।

चेतयिता जिसको निमित्त है जाननहार आत्मा परपदार्थ को निमित्त है **ऐसे अपने (-पुद्गलादिके-) स्वभावके परिणाम द्वारा** आहाहा! स्वयं निमित्त है ऐसा नहीं लिखा; पर निमित्त है। **चेतयिता जिसको निमित्त है** पर को, **ऐसे अपने (-पुद्गलादिके-) स्वभावके परिणाम द्वारा उत्पन्न होनेवाले पुद्गलादि परद्रव्यको अपने (-चेतयिताके-) स्वभावसे अपोहता है अर्थात् त्याग करता है--** क्या कहा? कि ये चारित्र की जो पर्याय प्रगट हुई है उसमें वह परद्रव्य निमित्त है तो वह परद्रव्य का त्याग करता है; परद्रव्य का त्याग करता है **इसप्रकार व्यवहार किया जाता है।** वास्तव में अपोहकस्वरूप है, परद्रव्य का त्याग आत्मा में है नहीं; परंतु वह स्वयं स्वभाव के सन्मुख होकर स्थिर हुआ इसलिए वो भाव उत्पन्न नहीं हुआ तो उसने त्याग किया (ऐसा) कहने में आता है।

मुमुक्षु: भाई, हिन्दी में।

पू. लालचंदभाई: दूसरी (बार), हिन्दी (में)। क्या कहा? कि चारित्र की पर्याय जो है उसमें राग उत्पन्न (होता) था, पर निमित्त और नैमित्तिक। अब वो चारित्र की पर्याय अंतर्मुख होती है, वो स्वभाव में लीन होती है तो वीतरागभाव प्रगट हुआ चारित्र की पर्याय में। उस समय राग का उत्पाद नहीं हुआ, तो

'राग को छोड़ा' - ऐसा नाममात्र कहा जाता है। उसका नाम व्यवहार है।

मुमुक्षु: राग उत्पन्न नहीं हुआ।

पू. लालचंदभाई: राग उत्पन्न नहीं हुआ उसका नाम राग का त्याग, उसका नाम व्यवहार है। (और) स्वभाव का ग्रहण उसका नाम निश्चय। राग का त्याग उसका नाम व्यवहार। परंतु राग है और राग को उसने छोड़ा है ऐसा पुरुषार्थ नहीं किया उसने। राग छोड़ने का पुरुषार्थ नहीं किया। स्वभाव ग्रहण करने का पुरुषार्थ हुआ तो पहले पूर्व पर्याय में राग था, उत्तर पर्याय में वीतरागभाव प्रगट हुआ, तो पूर्व पर्याय में राग की उत्पत्ति थी अब उत्तर पर्याय में राग की उत्पत्ति नहीं हुई, तो राग का त्याग किया साधक ने - ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु: बहुत स्पष्ट! बहुत सुंदर! एकदम साफ।

पू. लालचंदभाई: इसलिए कहा कि अंतिम लाइन आएगी न, तब उसका खुलासा करेंगे।

मुमुक्षु: Clear (स्पष्ट), clear हो गया एकदम।

पू. लालचंदभाई: Clear हो गया न? कि पूर्व पर्याय में राग था साधक को। समझे? छठे गुणस्थान में राग था, संज्वलन कषाय। अपने को मुनिराज को देखकर समझ में आ जावे। इधर तो चतुर्थ गुणस्थान की बात है। मगर मुनिराज छठे गुणस्थान में हैं, छठे गुणस्थान में पाँच महाव्रत का राग तो था। ठीक है? अब राग का उन्होंने त्याग किया (इसका अर्थ) क्या है? त्याग कैसे करते हैं? अब जो सप्तम गुणस्थान में शुद्धोपयोग में चले गये तो छठे गुणस्थान के योग्य पाँच महाव्रत का परिणाम जो बुद्धिपूर्वक उत्पन्न होता था, वो हुआ ही नहीं; तो उन्होंने पाँच महाव्रत (का) राग का त्याग किया - ऐसा नाममात्र, कथनमात्र है, त्याग-व्याग कोई करते नहीं हैं। त्याग करे तो मिथ्यादृष्टि है और उत्पन्न होवे तो सप्तम गुणस्थान नहीं आता है, तो उपचार से त्याग नहीं होता है। सप्तम गुणस्थान में आते हैं तो उपचार से त्याग किया कहा जाता है। छठे गुणस्थान में रहे तो त्याग का नाम आता नहीं है।

मुमुक्षु: सप्तम गुणस्थान में आवे तो उपचार से त्याग किया - ऐसा कहा जाता है।

पू. लालचंदभाई: सप्तम में आवे तो छठे का जो विकल्प था, वो छूट गया, उत्पन्न ही नहीं हुआ। तो उसने संज्वलन कषाय का त्याग आज कर दिया। त्याग नहीं किया, कथनमात्र है। उत्पन्न नहीं हुआ उसका नाम त्याग है। पूर्व पर्याय में था, उत्तर पर्याय में नहीं है; तो उत्तर पर्याय में नहीं है तो पूर्व पर्याय में गया, गया, उत्पन्न हुआ नहीं, उसका नाम त्याग किया साधक ने। संज्वलन कषाय का त्याग किया। त्याग कौन करे? त्याग नहीं किया है; कहने में आता है बस, कथनमात्र है, नाममात्र है। आहाहा!

मुमुक्षु: तो ग्रहण और त्याग की पर्याय तो एक ही हुई, एक पर्याय में ही ग्रहण है एक पर्याय में ..

पू. लालचंदभाई: पूर्व पर्याय में ग्रहण नहीं था, उत्तर पर्याय में ग्रहण आया।

मुमुक्षु: अच्छा!

पू. लालचंदभाई: पूर्व-उत्तर पर्याय में फर्क है। छठे गुणस्थान में तो पाँच महाव्रत का विकल्प था। अब सप्तम गुणस्थान में गये, शुद्धोपयोग हो गया तो विकल्प उत्पन्न नहीं हुआ। तो वो विकल्प की उत्पत्ति नहीं हुई तो विकल्प को छोड़ा मुनिराज ने आज (ऐसा कहने में आया)।

समझो आहार का विकल्प आया, आहार का विकल्प आया। छठे गुणस्थान में आहार का

विकल्प है। ठीक है? अच्छा, आहार का जो विकल्प छठ्ठे गुणस्थान में आया वो सप्तम गुणस्थान में चला गया। आनंद का भोजन किया तो आहार का विकल्प उस समय नहीं है, तो आहार का त्याग किया, आज उपवासी हैं। एक समय का उपवास है वो, वो सच्चा उपवास है। समय का उपवास, एक-एक समय का उपवास। उपवास संवर-निर्जरा तत्त्व है, उदयभाव नहीं है। आहाहा! ये छठ्ठे-सातवें गुणस्थान की (बात) यदि आप लो न, तो बैठ जाए। इसीप्रकार चौथे गुणस्थान में भी, सुनना! चौथे गुणस्थान में पूर्व पर्याय में अप्रत्याख्यान आदि का जो राग उत्पन्न होता था, वो उत्तर पर्याय में शुद्धि की वृद्धि हो गयी और अशुद्धि की हानि हुई, उसका त्याग हो गया।

फिर से। क्या कहा? सविकल्प सविकल्प में, अभी निर्विकल्पध्यान की जरूरत नहीं है। वो तो दृष्टांत मैंने दिया समझाने के लिए। अभी चौथे गुणस्थान में सविकल्प है। शुद्धोपयोग हुआ नहीं समझो। मगर शुद्धि की वृद्धि समय-समय पर होती है कि नहीं? तो पूर्व पर्याय में समझो ४० degree की शुद्धि तो है। अब एक समय में ४१ degree की शुद्धि हुई। तो ४१ degree की जो शुद्धि हुई, तो पहले ४० और ६० था। ४० की शुद्धि और ६० की अशुद्धि थी कि नहीं? कि नहीं है? ४० की शुद्धि और ६० की अशुद्धि। ठीक है? अब ४१ की शुद्धि हुई तो ५९ वहाँ हो गया, तो एक पॉइंट का अभाव हो गया उसको 'त्याग किया' - ऐसा कहने में आता है। इधर बढ़ेगा तो वहाँ कम हुआ तो एक पॉइंट का त्याग कर दिया, राग का (त्याग किया) - ऐसा कहा जाता है। राग का त्याग किया (नहीं)।

मुमुक्षु: राग के सद्भाव से उसको व्यवहार कहने में नहीं आता...

पू. लालचंदभाई: नहीं!

मुमुक्षु: परंतु जो यहाँ ग्रहण होने पर जो अभाव होता है....।

पू. लालचंदभाई: उसका त्याग क्योंकि त्याग.... त्याग अर्थात् त्याग की बात है न यह तो! त्याग को व्यवहार कहते हैं। ग्रहण को व्यवहार नहीं कहते। त्याग कुछ करता है कि नहीं साधक? कि हाँ! त्याग करता है। कि समुचित त्याग करता है कि समय-समय पर? समय-समय पर त्याग का हिस्सा है! ४० degree की शुद्धि थी, वहाँ ६० degree की अशुद्धि थी। अभी सविकल्पदशा में है तो भी स्वभाव का अवलंबन तो चालू है। शुद्धि की वृद्धि होती है या निर्जरा नहीं होती है?

मुमुक्षु: हाँ, होती है।

पू. लालचंदभाई: समय-समय पर निर्जरा होती है, तो जितनी शुद्धि की वृद्धि उतनी मात्रा में, उतनी degree में अशुद्धि की हानि। अशुद्धि की हानि का नाम अशुद्धि का त्याग किया - ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षु: बहुत अच्छा साहेब! आपने छठ्ठे-सातवें (गुणस्थान) का उदाहरण लिया तब मुझे ऐसा विचार आया ... हो उस समय क्या होता है? सविकल्पदशा की बात...

पू. लालचंदभाई: हाँ! आया न चौथा गुणस्थान। अब चौथा लिया सविकल्पदशा है, शुद्धोपयोग में गया नहीं है। शुद्ध परिणति है, परंतु शुद्धि की वृद्धि होती ही रहती है। तो जितनी मात्रा में शुद्धि की वृद्धि उतनी degree में अशुद्धि की हानि, degree to degree होती है।

मुमुक्षु: सब कुछ किस तरह जाना?

पू. लालचंदभाई: ये त्याग की बात है। व्यवहार चारित्र और चारित्र का व्यवहार, चारित्र का व्यवहार। व्यवहार क्यों है कि अभी त्याग की बात आई न इसलिए व्यवहार। राग छोड़ा, राग की उत्पत्ति नहीं हुई तो राग का त्याग किया - उसका नाम व्यवहार, क्योंकि नाममात्र है। सचमुच तो राग उत्पन्न ही नहीं हुआ, छोड़े कौन? उत्पन्न नहीं हुआ तो छोड़ा - ऐसा कहा जाता है। ज्ञान प्रत्याख्यान!

मुमुक्षु: ज्ञान (ही) प्रत्याख्यान (है) - (समयसार गाथा ३४)।

पू. लालचंदभाई: ज्ञान प्रत्याख्यान! ज्ञान में जान लिया कि ये राग मेरा नहीं है, तो ममत्व छूट गया। राग का सद्भाव होने पर भी राग का त्यागी हो गया। अभी ये ३४ गाथा में लेना है। इसका खुलासा हो गया बराबर?

मुमुक्षु: हो गया।

पू. लालचंदभाई: छठ्ठे-सातवें का दृष्टांत और चौथे की स्थिति। समझे? आहाहा! शुद्धि की वृद्धि होती है लड़ाई में भी। लड़ाई में भी होती है। ये माला फेरने की जरूरत नहीं। वहाँ तो तलवार होती है, चक्र फिरता है चक्रवर्ती का तो भी शुद्धि की वृद्धि चालू है। क्योंकि लक्ष आत्मा पर है, तलवार पर लक्ष नहीं है। क्रिया पर लक्ष नहीं है। इच्छा बिना क्रिया हो जाती है।

अज्ञानमयी इच्छा होती नहीं है। कर्ताबुद्धि छूट गयी, क्रिया हो जाती है। आहाहा! Logic (न्याय) से जो जरा मध्यस्थ (होकर) विचार करे तो बैठ जाये। बैठ जाये ऐसी बात है। नहीं बैठे ऐसी बात नहीं है।

मुमुक्षु: सही बात है वो!

पू. लालचंदभाई: सही बात है?

मुमुक्षु: बिल्कुल!

पू. लालचंदभाई: अच्छा, बिल्कुल! और समझो कि शुद्धि की वृद्धि हो ही नहीं, तो तो पंचम गुणस्थान आवे ही नहीं किसीको। शुद्धि की वृद्धि - संवरपूर्वक निर्जरा होती है ऐसा आगम का वचन है। संवरपूर्वक निर्जरा होती है। नये भाव की रुकावट और पुराने भाव का अभाव - ऐसा होता है। नये भाव की रुकावट! ...

त्याग का नाम व्यवहार है। ग्रहण का नाम तो निश्चय (है), मगर त्याग का नाम व्यवहार है। तो त्याग, त्याग (में) वो छोड़ता नहीं है राग को, कपड़े को छोड़ते नहीं हैं मुनिराज। सहज छूट जाते हैं। और उस संबंधी जो विकल्प था, पंचम गुणस्थान में कपड़े का विकल्प था और जब दीक्षा ली तो वो विकल्प छूट गया तो कपड़े का त्याग किया, निमित्त का त्याग किया, नैमित्तिकभाव का भी त्याग (किया -ऐसा कहा जाता है)। नैमित्तिक की उत्पत्ति नहीं हुई तो नैमित्तिक का त्याग, उपचार से निमित्त का भी त्याग (किया, ऐसा) उपचार से कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु: वास्तव में इधर नैमित्तिक की उत्पत्ति ही नहीं होती है, तो उधर कहा जाता है कि निमित्त का त्याग किया।

पू. लालचंदभाई: यदि इधर नैमित्तिक की उत्पत्ति हुआ करे तो त्याग कहाँ से आया? तो त्याग नहीं बनेगा। सुनना! यदि नैमित्तिक की उत्पत्ति चालू रहे तो त्याग नाम नहीं आता है। अंशतः

नैमित्तिकभाव छूटता है, सर्वांश नैमित्तिकभाव नहीं छूटता है; तो तो यथाख्यात् हो गया, अभी शुद्धोपयोग हुए है। आहाहा! सूक्ष्म बात है! नैमित्तिक का अंश भी एक अंश घटता है। जितना चारित्रमोह के उदय में पूर्व पर्याय में जुड़ता था और बाद की पर्याय आई तो कम जुड़ता है। जुड़ने की मात्रा कम हो जाती है।

मुमुक्षु: क्योंकि इधर शुद्धि की वृद्धि बढ़ती जाती है न!

पू. लालचंदभाई: हाँ!

मुमुक्षु: इसलिए वो कर्म छूटता जाता है।

पू. लालचंदभाई: छूटता जाता है।

मुमुक्षु: इसलिए कहा जाता है कि इतना उसने त्याग किया।

पू. लालचंदभाई: त्याग किया। जितनी अशुद्धि उत्पन्न नहीं हुई उसका त्याग किया, बस इतना ही! जितनी अशुद्धि है उसका तो ज्ञाता रहता है, स्वामी तो है ही नहीं। तो दृष्टि अपेक्षा से तो त्याग है मगर अभी ज्ञान अपेक्षा से त्याग की बात चलती है अभी ये तो। ये ज्ञान अपेक्षा से त्याग की बात चलती है। दृष्टि अपेक्षा तो है ही नहीं, वीतरागी पर्याय या शुद्ध-अशुद्ध पर्याय है ही नहीं, संवर-निर्जरा नहीं है आत्मा में। वो बात अलग है।

अभी साधक के आचरण की बात है और त्याग की बात है। ये त्याग कोई जानता नहीं है। दिगम्बर जानते नहीं हैं। (सब) बाहर का त्याग - ये खाना, ये नहीं खाना (सब) बाहर का त्याग है। आहाहा! बहुत कठिन काम है। ये तो अंदर के त्याग की बात है।

मुमुक्षु: ये तो नैमित्तिक के त्याग की बात है।

पू. लालचंदभाई: नैमित्तिक का त्याग हुआ तो निमित्त का त्याग हुआ, किया - ऐसा उपचार से कहा जाता है।

मुमुक्षु: नैमित्तिक का त्याग भी नाममात्र है।

पू. लालचंदभाई: त्याग भी नाममात्र है इसलिए व्यवहार है। वो परद्रव्य तो परद्रव्य है, वो तो निमित्तमात्र है। उसे तो त्याग-ग्रहण का व्यवहार ही कहाँ है? इसका अंदर में व्यवहार है। निश्चय-व्यवहार अंदर में है। जितना स्थिर हुआ, वीतरागता हुई (वह) निश्चय और जितना राग को छोड़कर अंदर में गया तो त्याग किया - ये व्यवहार।

मुमुक्षु: जितना राग है उसका नाम व्यवहार नहीं है।

पू. लालचंदभाई: ना ना! राग का सद्भाव व्यवहार नहीं (है) क्योंकि यहाँ तो त्याग की बात (है)। क्या साधक त्याग करता है? साधक का कोई त्याग होता है कि नहीं? कि हाँ! हमारे साधक तो समय-समय पर त्याग करते हैं। हमारा त्यागी तो चौबीस घंटा खाता नहीं है तब त्याग होता है। नहीं हमारा साधक तो समय-समय पर त्याग करता है। तो दिखाई (तो) देता नहीं है? कि तेरी आँख नहीं है। देखने के लिए अतीन्द्रियज्ञान (की) चक्षु चाहिए। चमड़े की आँख से त्याग दिखता (नहीं है)। नहीं दिखता है। आहाहा!

मैंने कौशलजी को कहा कि सब बाहर की कड़ाकूट (माथा-पच्ची) बंद करके अपने आत्मा का

हित कर लो। समय आया है, बस। अपने को समाज के साथ क्या संबंध है? सच्चे देव-गुरु-शास्त्र मिले, शास्त्र मिले, गुरुदेव जैसे गुरुदेव (मिले), स्पष्टीकरण आया सब, भेदज्ञान करके आत्मा में अनुभव कर लो, बस।

शुद्धि की वृद्धि होती है वो तो सिद्धांतिक बात है कि नहीं? संध्याजी!

मुमुक्षु: सिद्धांतिक। हां जी!

पू. लालचंदभाई: सिद्धांतिक बात। तो शुद्धि की वृद्धि होती है तो अशुद्धि की हानि होती है कि नहीं?

मुमुक्षु: होती है न, वो ही त्याग है।

पू. लालचंदभाई: वो ही त्याग है बस, उसका नाम त्याग है।

मुमुक्षु: बहुत एकदम सांगोपांग जैसा है वैसा सचित्र वर्णन।

मुमुक्षु: तो शुद्धि की वृद्धि की और अशुद्धि की हानि की पर्याय एक ही है?

पू. लालचंदभाई: पूर्व पर्याय में, पूर्व पर्याय में जितनी अशुद्धि थी...

मुमुक्षु: अपेक्षा आएगी न इसमें पूर्व पर्याय की।

पू. लालचंदभाई: लेनी ही चाहिए।

मुमुक्षु: तो ही अशुद्धि की हानि घटित हो न!

पू. लालचंदभाई: हाँ! घटित हो न!

मुमुक्षु: भाई! मेरे कहने का अर्थ ये है कि इधर स्वरूप का ग्रहण हुआ, तो उधर उसका विकल्प ही नहीं उठा तो उतना उसका त्याग हुआ। तो पर्याय तो एक ही हुई न, ग्रहण-त्याग की, स्वरूप के ग्रहण की....

पू. लालचंदभाई: पर्याय एक है मगर एक ही पर्याय में विकल्प भी है और एक ही पर्याय में विकल्प छूटता है, ऐसा नहीं है। पूर्व पर्याय में (जो) विकल्प (था वो) छूटा तो उत्तर पर्याय में वीतरागता की उत्पत्ति होती है। पूर्व-उत्तर पर्याय एक है मगर पूर्व और उत्तर - ऐसा मैंने कहा। पर्याय एक है मगर उसके दो भाग (हैं) पूर्व और उत्तर। पर्याय एक है, दो पर्याय नहीं लेना। पूर्व का व्यय और उत्तर का उत्पाद। पर्याय तो है मगर पूर्व पर्याय का व्यय और उत्तर पर्याय का उत्पाद - ऐसा तो होता है कि नहीं?

मुमुक्षु: होता है।

पू. लालचंदभाई: तो पूर्व पर्याय में जितनी degree का राग था, पर्याय में, पर्याय में राग था। बराबर? उतनी degree की उत्तर पर्याय जो होती है आत्मसन्मुखवाली, वो ६० degree की अशुद्धि लेकर अंदर नहीं जाती है। ४१ degree की शुद्धता और ५९ (degree अशुद्धता) वहाँ हो गयी तो इतना अभाव हो गया।

मुमुक्षु: समझ में आती है वस्तु।

पू. लालचंदभाई: एक ही पर्याय में आस्रव और एक ही पर्याय में निर्जरा। पर्याय तो एक है मगर पूर्व-उत्तर में उसका भाग है। पूर्व पर्याय और उत्तर पर्याय...

मुमुक्षु: पूर्व-उत्तर से मतलब नीचे से और ऊपर से।

पू. लालचंदभाई: नहीं! भूतकाल में... भूतकाल एक समय पहले! एक समय पहले जो था वो दूसरे समय में नहीं रहा। दूसरे समय में ४१ degree शुद्धि हो गयी। पहले समय में तो, (पहले) समय में तो ४० degree था और दूसरे समय में ४१ हो गयी।

मुमुक्षु: तो वहाँ ५९ हुई।

पू. लालचंदभाई: हाँ! वहाँ ५९ हुई।